P.G.
SEM - I
Paper - 4

डा० कुमारी चम्पा
हिन्दी विभाग,
महाराजा कालेज

Date

प्रश्न :- विद्यापति के काव्य में विरही हृदय की पीड़ा का बड़ा मार्मिक चित्रण मिलता है। इस कथन पर विचार कीजिए।

उत्तर :- विद्यापति भारतीय साहित्य की 'श्रृंगार परंपरा' के साथ-साथ भक्ति-परम्परा के प्रमुख स्तंभों में से एक और मैथिली के सर्वोपरि कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनकी रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ठ एवं मैथिली तीनों में मिलती है। विद्यापति का कवि रूप उनके भक्त रूप से सदा प्रमुख रहेगा। भक्तों की सी तन्मयता और समर्पण भावना, दीनता और विनय उसमें है ही नहीं। उनका प्रेम शरीर की स्वरूप भास्वल आवश्यकता है। अतः उनके विरह वर्णन का स्वरूप ठीक से समझने के लिए यह स्मरण रखना आवश्यक है कि उन्होंने उसका अंकन भक्ति अथवा रहस्य भावना से अभिभूत होकर नहीं किया है।

शुक्ल जी का कथन है कि "गुण-श्रवण, स्वप्न दर्शन आदि से उत्पन्न प्रेम सच्चा नहीं होता, प्रिय का साक्षात्कार होने से पूर्व जो प्रणय भाव अंकुरित होता है वह लोभ ही कहा जाना चाहिए। 'बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता, प्रेम दूसरे की आँखों से नहीं देखता, अपनी आँखों से देखता है। वह रूप लोभ ही कहा जा सकता है।" विद्यापति के काव्य में पूर्वराग का चित्रण तो है, पर वह गुण श्रवण के साथ-साथ प्रिय-दर्शन से उद्भूत है। वह स्वप्न दर्शन का परिणाम नहीं, उल्टे स्वप्न-दर्शन उसका प्रतिफल है। अतः पूर्वराग के समय जो विरह वर्णन किया गया है, वह 'नकल सा' नहीं है। हाँ उसे वह उदात्त भूमि पर विचरण करनेवाला भी नहीं कह सकते जिस पर विचरण कर वह अलौकिक, अपार्थिव

Date

आध्यात्मिक और अशरीरी हो उठता है। मांसल एवं पार्थिव होते हुए भी वह सच्चा है, जिसमें हृदय का हाहाकार है और वेदना की तीव्र ज्वाला है। विरह की सामान्यतः दस दशाएँ होती हैं – अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता आदि। विद्यापति ने इन सबका चित्रण किया है। राधा अपरूप के दर्शन कर पहले तो पुनः दर्शन की अभिलाषा करती है पर जब वह नहीं दिखता तो सुध-बुध खो बैठती है, आत्मविस्मृत हो उठती है –

"ए सखि इँगिनि कहत निसान
हेरइत पुनि मोर हरत गिआन।"

पूर्वराग की स्थिति में भी उसकी आकुलता कुछ कम नहीं है –

"मुगधानि रमनी तुअ लागि रोय
निसि-दिन जागि जपय तुअ नाम
थर थर काँपि पड़ए सोइ ठाम"

विप्रलंभ के दो भेद माने गए हैं – मान जन्य तथा प्रवास-जन्य। मान के पुनः दो भेद किए गए हैं प्रणय मान तथा ईर्ष्या-मान। प्रणय मान का कारण नायक द्वारा क्षुब्ध न निभाना और इस प्रकार प्रणय-भंग करना होता है जबकि ईर्ष्या भाव तब होता है जब नायिका को पता लगता है कि नायक किसी अन्य स्त्री में अनुरक्त है। उसका यह अनुमान या तो स्वप्न में नायक को पर स्त्री की साथ समागम करते देखने होता है अथवा अन्यत्र रात बिताकर प्रातः आनेवाले नायक के शरीर पर स्त्री समागम के चिन्ह देखकर लगाया जाता है, या नायक के मुख से असावधानी के क्षणों में किसी अन्य स्त्री का नाम निकल जाने से लगाया जाता है। विद्यापति ने मान की इन सभी स्थितियों को

चित्रण किया है। यहाँ नायिका नायक की भंगिमा और वेशभूषा की विकृति से पर स्त्री के साथ की गयी रति के चिन्ह देखकर मान करती है —

"लोचन अरुन बुझल बड़ भेद।
रयनि उजागर गरुअ निवेद॥
कुच कुंकुम भाखल हिय तोर।
जनि अनुराग रंगि कुरु गोर॥
आनक भूषण तोर कलंक।
बड़ ओ भेद भेद ओ परसंग॥"

प्रवासजन्य विरह के दो भेद होते हैं — दैववशात जो किसी शाप का परिणाम होता है जैसे मेघदूत में, और दूसरा कार्यवशात, जबकि नायक को किसी कार्यवश विदेश जाना पड़ता है। अतः विद्यापति के काव्य में कार्यशात प्रवासजन्य वियोग का ही वर्णन है। विद्यापति ने इसका आरंभ भी मौलिक ढंग से किया है। कृष्ण नायिका को सोती छोड़ जाते हैं —

"एकसयन सखि सुतल रे आछल बालम निसि भोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे, बिछुरल चकेवा जोर।"

विरहिणी का दैन्य और विषाद यदि 'गोपी सकल बिसरलनि रे जत छल अहिबाती' से प्रकट होता है, तो उसका असामर्थ्य, विवशता एवं ईर्ष्या

"कत कहबो कत सुमिरब रे हम भरि गरानि।
आनक धन सा धनवंती से कुबजा भेल रानि।"

में अभिव्यक्त हुई है।

प्रतीक्षारत नायिका की करुणापूर्ण स्थिति का मर्मस्पर्शी चित्र निम्न पंक्तियों में है —

"नखर खोआओलुं दिवस लिखि-लिखि
नयन अंधा ओलु पिया पथ देखि।"

प्रिय के बिना उसे संसार तथा संसार के भोगों से विरक्ति है

जाती है। पृथ्वी के संपूर्ण आकर्षण उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखते। प्राणों में केवल पीड़ा जो बस जाती है। उसके लिए तो संपूर्ण ~~पदार्थों~~ पदार्थों का सुख प्रिय को लेकर है, यदि प्रिय ही नहीं है तो उनका कोई मूल्य और मान नहीं रहता, चन्द्रमा की शीतलता, चन्दन का अंगलेप, मृगमद का सौरभ, वर्षा की झड़ी सब व्यर्थ है। इतना ही नहीं वे उद्दीपनकारी प्रभाव से उसकी करुण-व्यथा और भी बढ़ा देते हैं –

"सखि हे हमर दुखक नहि ओर।
इभर बादर माह भादर सून मन्दिर मोर।।
झंपि घन गरजंति संतत भुवन भरि बरसंतियां।
कंत पाहुन काम दारुण सघन खर सर हंतिया।।"

इन पंक्तियों में विरहिणी के दुःख की जो तीव्र एवं मर्मभेदी व्यंजना हुई है वह अत्यंत दुर्लभ है। 'भर बादर' और 'सून मंदिर' में जो व्यंजना है वह अत्यंत प्रभावशाली है।

विद्यापति की नायिका इतनी आकुल प्राण है कि अपनी वेदना को असह्य मानकर प्राण त्याग देना चाहती है। उस विरह-ताप से चिता की अग्नि कहीं शीतल और सुखकर प्रतीत होती है, अतः वह सहेलियों से विनय करती है कि वे उसे चिता में जला दें –

"विनति करओं सहलोनि मोहि देह अगिहर साजा"

सारतः कहा जा सकता है कि विद्यापति का विरह वर्णन अत्यंत भावप्रवण और कलात्मक है। उसमें भावों की जैसी प्राणवत्ता है, हृदय की जैसी विदग्धता है, प्राणों की जैसी पीर है, तन्मयता और विस्मृति है वह अन्यत्र दुर्लभ है।